P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-4*(Supplementary Issue) July- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

नाथ सम्प्रदाय की साधना पद्धतियों का तात्विक अध्ययन

तेजकरण मीना
शोधार्थी
इतिहास विभाग,
राजकीय कला स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, दौसा,
राजस्थान

श्रीफूल मीना
एसोसिएट प्रोफेसर
इतिहास विभाग,
राजकीय कला स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, दौसा,
राजस्थान

सारांश

नाथ शब्द का शाब्दिक अर्थ स्वामी, ईश्वर, प्रभु, मालिक आदि होता है। परन्तु एक संप्रदाय के रूप में इसका अर्थ वह अनादि धर्म है जो भुवनत्रय की स्थिति का कारण है। नाथ संप्रदाय में जीवन का परमलक्ष्य मोक्ष प्राप्ति बताया गया है .मोक्ष प्राप्ति के लिए इन्द्रियों को अपने वश में करना आवश्यक है। इसके लिए नाथ संप्रदाय के गुरुओं ने एक जटिल साधना बताई है जैसे – हठयोग, आसन प्राणायाम षट्कर्म बंध नाणियो मुद्रा चक्र। नाद और बिंदु इस साधना पद्दति को सफलतापूर्वक संपन्न करने के लिए गुरु के मार्गदर्शन को अनिवार्य माना गया है। इस साधना में पारंगत होने पर मनुष्य सिद्ध या योग कहलाता है और उसे सहज आनंद अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

मुख्य शब्द : नाथ, नाथ संप्रदाय ,मोक्ष, योग, हठयोग, आसान, प्राणायाम, षट्कर्म, बंध नाड़ियो, मुद्रा, चक्र, छक्र, नाद बिंदु, ब्रह्मा, जीवन एवं माया जगत, सतगुरु।

प्रस्तावना

भारतवर्ष की भूमि के कण–कण में धार्मिक आस्था भरी पड़ी है, फलस्वरूप भारत धर्म प्रधान देश कहलाता है। यहाँ प्राचीन समय से ही विभिन्न सम्प्रदायों का प्रभाव दिखाई पड़ता है, जिनमें मुख्यतः शैव एवं वैष्णवों ने उच्च आदर्श एवं उन्नति का मार्ग दिया है।

भारतीय धर्म साधना में नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक आदिनाथ भगवान शंकर माने जाते है।[1] नाथ पंथ के अनेक समानार्थी नाम सुनने में मिलते हैं, जिनमें सिद्ध मत, योग मार्ग, योग सम्प्रदाय, अवधूत सम्प्रदाय आदि प्रमुख हैं। यह सम्प्रदाय अपने में कौल, शाक्त, कापालिक आदि मान्यताओं को समाहित किए हुये है। भारत के प्रत्येक भू–भाग में नाथों का बोलबाला रहा है। विभिन्न ऐतिहासिक स्थलों पर इनके मंदिर, अखाड़े, मठ तथा टीलें आदि देखनें को मिलते हैं। नाथों को विभिन्न रूपों में भिन्न–भिन्न साज–सज्जाओं के साथ रचे–जचे देखा जा सकता है। यह नाथ कानों में कुण्डल डाले, भस्मी रमाये, ऊन लपेटे, घुंघरू बजाते हुए, तो कहीं हाथ में बीन लिए, गले में झोली डाले, सांपों को नचाते हुए मिलते है। किंगरी, सिंगी, शंख फूंकना, तो कहीं अलख जगाना, झाड़ फूंक करना, भिक्षावृत्ति करना इनका व्यवसाय है।[2] एक ओर जहाँ मंदिरों–मठों में ये नाथ सबद, सवादी पद या दोहड़े आदि गाते हुए दृष्टिगोचर होते हैं तो भिक्षा के समय इकतारा, सारंगी, तुम्बा, मंजीर आदि स्वरूपों में देखे जाते हैं।

शोध पत्र के उद्देश्य

1. प्रस्तुत शोध पत्र में यह जानने का प्रयास किया जायेगा कि नाथ सम्प्रदाय क्या है ? उसकी साधना पद्धतियाँ क्या है और उनका क्या महत्व है ?
2. इस शोध पत्र का एक उद्देश्य यह जानने का प्रयास भी है कि नाथ सम्प्रदाय की साधना पद्धतियों का भारतीय संस्कृति और जनमानस पर क्या प्रभाव पडा ?

शोध विधि

इस शोधपत्र को लिखने में मैने द्वितीयक स्रोतों और नाथ सम्प्रदाय के विभिन्न आचार्यो के साथ वार्तालाप से प्राप्त जानकारी का उपयोग किया है।

शोध पत्र का महत्व

इस शोध पत्र से पाठकों एवं शोधार्थियों को नाथ सम्प्रदाय एवं उसकी साधना पद्धतियों के बारे में जानकारी प्राप्त होगी और उनका महत्व समझ आयेगा।

नाथ शब्द के अर्थ की व्याख्या विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से की है। शक्ति संगमतंत्र के अनुसार ''ना'' का तात्पर्य उस नाथ ब्रघ से है जो मोक्ष ज्ञान में दक्ष है उनका ज्ञान करता है। ''थ'' का अर्थ अज्ञान के सामर्थ्य को स्थापित

करने वाला। नाथ वह तत्त्व है जो मोक्ष प्राप्त करता है। नाथ ब्रघ का अनुमोदन करता है अज्ञान का स्थगन करता है।[3]

नाथ शब्द 'नाथृ' धातु से बना है जिसके याचना, ऐश्वर्य, उपताप (तापों को तप से समाप्त करना), आशीर्वाद आदि अर्थ है। ''नाथृ याचजोयता पैश्वर्याशीःइति माणिनिः।'' अतः जिसके ऐश्वर्य, आशीर्वाद, कल्याण मिलता है वह नाथ है। नाथ शब्द का सामान्य अर्थ स्वामी, ईश्वर, प्रभु, मालिक आदि लगाया जाता है।[4]

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार ''ना'' का अर्थ अनादि रूप तथा ''थ'' का अर्थ है (भुवनत्रय) का स्थापित होना। इस प्रकार ''नाथ'' मत का स्पष्ट अर्थ वह अनादि धर्म है जो भुवनत्रय की स्थिति का कारण है। श्री गोरक्ष को इसी कारण से 'नाथ' कहा जाता है।[5]

विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद के दशम–पटल के सूक्त–130 में नाथ के बारे में कहा गया है–

''को अद्धावेद कः इह प्रवोचस्कतु आजात कुत इयं वि
सृष्टि। अवीग्देवा अस्य विसर्जने नाथा को वेदयत आवभूम
शंभूयति।''

यह सृष्टि कहाँ से हुई ? इस तत्त्व को कौन जानता है ? किसके द्वारा हुई ? क्यों हुई ? कब से हुई ? इत्यादि विषय के समाधान कर्त्ता व पथ दृष्टा नाथ ही है। यहाँ ऋग्वेद में नाथ शब्द का प्रयोग सृष्टिकर्त्ता, ज्ञाता तथा सृष्टि के निमित्त रूप में किया गया है। अथर्ववेद में भी ''नाथित'' और ''नाथ'' शब्द का प्रयोग मिलता है।[6]

शक्ति–संगम–तंत्र के अनुसार ''नाथ'' तत्त्व मोक्ष प्रदान करता है, बघ्र का अनुमोदन और अज्ञान का स्थगन करता है।

''श्री मोक्षदान दक्षत्वात् नाथ ब्रघानुबोधनात्।
स्थगिता ज्ञान विभवात श्री नाथ इति गीयते।''

नाथ–सम्प्रदाय को प्राचीन काल से ही सिद्ध–मत, सिद्ध–मार्ग, योग–मार्ग, योग–सम्प्रदाय, अवधूत मत, अवधूत सम्प्रदाय, जोगेश्वर मत इत्यादि नामों से जाना जाता रहा है। समय की गति के साथ–साथ नाथ सम्प्रदाय 'सिद्ध' 'अवधूत' और 'योगेश्वर' का पर्याय हो गया।[7]

राजग्रह्म में

''नाकारोऽनादिरूपः थकारः स्थापितः सदा।
भुवनत्रयमेवैकः श्री गोरक्ष नमो ऽस्तुते।''

अर्थात् ''ना'' का अर्थ अनादि रूप ''थ'' का अर्थ भुवनत्रय का स्थापित होना। इस प्रकार ''नाथ'' का शाब्दिक अर्थ है, वह अनादि धर्म जो भुवनत्रय की स्थिति का कारण है। महायोगी गोरक्षनाथ, नाथ स्वरूप में स्थित है अर्थात् स्वयं नाथ है अतः उन्हें गोरक्षनाथ कहा जाता है। नाथ शब्द का विच्छेद करने पर शाब्दिक अर्थ है ना = शून्य एवं थ = स्थित। अर्थात् जो शून्य में स्थित है वह नाथ है क्योंकि आदि नाथ शिव ही शून्य में तत्त्व रूप से व्याप्त है। अतः उपरोक्तानुसार भुवनत्रय में स्थित प्रत्येक तत्त्व मात्र नाथ है।[8]

नाथ शब्द का एक अन्य अर्थ है षण्मुखी योग मुद्राओं से शरीरस्थ दस द्वारों में से नौ द्वारों को नाथने वाला 'नाथ' कहलाता है।

श्रीमद्भागवद्गीता के अध्याय 5 के श्लोक 12 के अनुसार –

''सर्वकर्याणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वनन कारयन्।''

अर्थात् जिसकी इन्द्रियाँ वश में है ऐसा देहधारी आत्म संयमी पुरूष (अर्थात् शरीर रूपी नगर के नौ द्वारों को नियंत्रित करने वाला) सम्पूर्ण कर्मों का सम्यक्रूपेण त्याग करके सुखपूर्वक रहता है।[9] विस्तृत रूप से देखा जायें तो यह परिभाषा भी पहली परिभाषा का ही दूसरा रूप है। यहाँ इस भम्र को दूर किया जा सकता है कि इन्द्रियों को जीतना और उन्हें वश में करना दो बिल्कुल अलग क्रियाएँ है। 'नियंत्रण' पद से किसी क्रिया का संचालन अभिप्रेत होता है, जबकि 'जीत लेना' पदों से दमनात्मक कार्यवाही प्रतिबिम्बित होती है। इसी कारण इन्द्रियों को दमनपूर्वक जीतने वाला जितेन्द्र अथवा जिनेन्द्र तो हो सकता है किन्तु वह उनका संचालक नहीं हो सकता और समय पाकर इन्द्रियाँ फिर से सक्रिय हो सकती है। श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित और योगियों का आशातीत आत्म संयम द्वारा इन्द्रियों का संचालक नाथ ही है।

इस प्रकार देखा जा सकता है कि नाथ शब्द के अर्थ एवं उसकी व्याख्या भिन्न–भिन्न स्थानों पर विभिन्न रूपों में मिलती है। किन्तु नाथपंथ निःशेष रूप से योगियों द्वारा प्रवर्तित है, जिनका उद्देश्य सहजता प्राप्त करना है। यह सहजता, वीर्य, श्वास तथा विचारों के नियंत्रण द्वारा काया साधना की पूर्णता से प्राप्त होती है।

साधना पद्धति

छठी ईस्वीं से बारवीं शताब्दी तक का काल भारतीय धार्मिक संस्कृति में तांत्रिक साधनाओं का काल था। ये साधनाएँ इतनी व्यापक और प्रबल हो उठी थी कि सभी सम्प्रदाय चाहे वे वैदिक हो या अवैदिक, वैष्णव हो अथवा शैव, बौद्ध हो या जैन सभी तंत्रचारित सृष्टितत्त्व, देवमण्डल, यंत्रविधान, मंत्र–साधना, आचार विधान तथा हठ योगी साधनाओं को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में प्रश्रय देने लगे थे। इसी कारण इस काल को तांत्रिक काल कहा है।[10]

सिद्ध–सिद्धान्त पद्धति नामक धार्मिक ग्रंथ नाथ सम्प्रदाय का प्रमाणिक ग्रंथ माना गया है। ग्रंथ में इस सम्प्रदाय के अनुयायियों से संबंधित आचार संहिता का उल्लेख हुआ है।[11]

नाथ पंथ की साधना ''हठयोग'' साधना कहलाती है। डॉ. द्विवेदी जी का मत है कि 'हठयोग' का मूल अर्थ यहीं जान पड़ता है कि कुछ इस प्रकार का अभ्यास किया जाता था जिससे हठात् सिद्धि मिल जाने की आशा की जाती थी।[12] साधक काया शोधन करने के बाद साधना का अधिकारी हो जाता है।

भारतीय धर्म साधना के क्रमिक विकास की अवस्था में तीन अवस्थाएँ मानी हैं। जिसमें पहली अवस्था है– ज्ञान की साधना, दूसरी है कर्म की साधना और तीसरी है भक्ति की साधना। इन तीनों साधनाओं का आधार क्रमशः ज्ञान, संवेदन एवं संकल्प है, जो मनुष्य की तीन मौलिक प्रवृत्तियों से संबंध रखते है। धीरे–धीरे भारतीय साधना कर्म से प्रभावित होकर लोक स्वभाव के

अनुसार अग्रसर हुई। उसी के आधार पर नाथ पंथ की प्रवृत्तियों का ऐसा स्वरूप स्थिर हुआ जिसने मध्य युग की भावधारा को दूर तक प्रभावित किया।[13] नाथ पंथ की साधना का लक्ष्य मुक्ति है, यह मुक्ति कुण्डलिनी उद्‌बोध के द्वारा प्राप्त होती है उसके लिए बिन्दु, वायु और मन का अचंचल और स्वाधीन होना ही साधक का लक्ष्य है।

हठयोग

हठयोग के आदि उपदेष्टा आदिनाथ शिव माने गये है। हठयोग के ''ह'' अक्षर का अर्थ है सूर्य तथा ''ठ'' अक्षर का अर्थ है चन्द्र। इन्हीं को इड़ा और पिंगला तथा प्राण और अपान भी कहते है। अतः हठयोग प्राण एवं अपान के योग का नाम है।[14] हठयोग के प्रमुख अंग आसन, प्राणायाम, मुद्रा और नादानुसंधान लय योग के अन्तर्गत आता है।[15]

आसन

प्राणायाम के लिए स्थिर होकर बैठने का नाम ही आसन है। वैसे तो 84 आसनों की व्यवस्था है पर प्रधानता केवल चार को ही प्राप्त है। वे है– सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन और भदासन। चारों में सिंहासन को अधिक महत्त्व प्राप्त है।

प्राणायाम

आसन के सध जाने पर प्राणायाम की प्रक्रिया आरम्भ होती है। प्राणायाम का प्रयोजन मन निरोध हें प्राणवायु को स्थिर कर लेने से मन स्थिर हो जाता है अतः मन की स्थिरता हेतु वायु निरोध अर्थात् प्राणायाम आवश्यक है।[16]

षट्‌कर्म

शरीर में भेद और श्लेष्मा की अधिकता के कारण प्राणायाम कष्ट साध्य हो जाता है इसलिए प्राणायाम के पूर्व षट्‌कर्मों का विधान रखा गया है। वह कर्म है धोति, वस्ति, नेति, त्राटक, नौलि और कपाल भाति।[17]

प्राणायाम की तीन स्थितियाँ–[18]

1. आसन लगाकर प्राणवायु को शनैः शनैः भीतर खींचना।
2. भीतर खींची हुई श्वास को कुछ समय के लिए भीतर रोक लेना।
3. भीतर रोकी हुई वायु को पुनः शनैः शनैः बाहर निकालना।

बन्ध

प्राणायाम को लाभदायक एवं सफल बनाने के लिए तीन बन्धों की व्यवस्था की गई है। तीन बन्धों में मूल बन्ध, उड्डीयानबन्ध और जालधरबन्ध आते है।

नाड़ियाँ

शरीर में 72 नाड़ियाँ बताई गई है। इन 72 नाड़ियों में इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना आदि तीन नाड़ियाँ प्रमुख है। इड़ा और पिंगला से प्राण संचार होता है। इड़ा वाम व पिंगला दक्षिण नाड़ी है। सुषुम्ना, इड़ा और पिंगला के मध्य में मूल स्थान से रीढ़ के भीतर होती हुई ऊपर जाती है।

मुद्रा

कुण्डलिनी के उद्‌बोधनार्थ दस मुद्राओं को आवश्यक बताया गया है। इन दस मुद्राओं में खेचरी मुद्रा प्रधान है। खेचरी मुद्रा की स्थिति में योगी दृष्टि को मध्य में स्थिर रख जिह्वा को तालु विवर में प्रविष्ट करता है।[19]

चक्र

कुण्डलिनी उत्थापन में चक्र भेदन को आवश्यक ठहराया है। योग शास्त्र का सिद्धान्त है कि जो ब्रह्माण्ड में है वहीं पिण्ड में भी है। इसी सिद्धान्त के आधार पर शरीर के अन्दर विश्व शक्ति तथा विविध ब्रह्माण्डों को जिन्हें चक्र कहते है। हठयोग के ग्रंथों में चक्रों की संख्या 6 मानी गयी है।

प्रथम चक्र – मूलाधार नामक है, वह गुदा के ऊपर लिंगमूल के नीचे सुषुम्ना के मुख में संलग्न है।

द्वितीय चक्र – स्वाधिष्ठान कहलाता है इसकी स्थिति लिंगमूल में है।

तृतीय चक्र – मणिपुर है जो नाभि के नीचे स्थित है।

चतुर्थ चक्र – अनाहत चक्र है। यह हृदय स्थल में अवस्थित है।

पंचम चक्र – विशुद्ध चक्र है। यह कण्ठ में स्थित है।

षष्ट चक्रम – यह आज्ञा चक्र है जो त्रिकुटी में स्थित है।

नाद

कुण्डलिनी के जाग्रत होने पर प्राणवायु जब चक्रों का भेदन करती हुई ऊपर उठती है तो स्फोट होता है। यही नाद कहलाता है अर्थात् गर्जन सी ध्वनि सुनाई पड़ती है।

बिन्दु

नाद में प्रकाश होता है। प्रकाश का व्यस्त रूप महाबिन्दु है। इस महाबिन्दु के तीन रूप है जो क्रमशः इच्छा, ज्ञान और क्रिया कहलाते है। इन्हीं को प्रतिकात्मक भाषा में शिव कहते है। आज्ञा चक्र में मन, प्राण, नाद तीनों का लय हो जाता है तथा ज्ञेय का भेद मिट जाता है और निर्विकल्प समाधि लग जाती है। योगी सहज आत्म सुख का अनुभव करता है।

षट्‌चक्र भेदन पश्चात् कुण्डलिनी साधना से शिव एवं शक्ति का सामंजस्य हो जाता है तब सहजानन्द की प्राप्ति होती है। यह सहज समाधि की उपलब्धि गुरूकृपा से सम्भव है।[20]

नाथ सिद्धान्त (अलवर के संदर्भ में)

अलवर जिलें के नाथों में आलोच्य योग साधना के साथ–साथ ब्रह्म एवं माया, जगत, मोक्ष, गुरू के महत्त्व पर अधिक बल दिया गया है।

ब्रह्म

अलवर के नाथ सम्प्रदायन्तर्गत ब्रह्म को परम शिव माना गया तथा सगुण एवं निर्गुण दोनों रूप में देखा गया है जो नाथ सम्प्रदाय के मूल दर्शन में परम शिव के निर्गुण रूप को ही स्वीकृति दी गई है। अलवर में नाथ सम्प्रदाय सगुण उपासना से प्रभावित हुआ।

जीवन एवं माया

नाथ समप्रदाय में जीव, पिण्ड अर्थात् शिव रूप का अंश है जो शक्ति से उत्पन्न होता है। यहीं शक्ति माया को आवृत्त करती है।

जगत

नाथ सम्प्रदाय में जगत शिव की परम इच्छा का अभिव्यक्त रूप माना गया है। शिव सृष्टि निर्माण की इच्छा करते है जिसके दो तत्त्व शिव तत्त्व एवं प्राप्ति तत्त्व प्रधान माने गये है। यहीं परम इच्छा शक्ति जगत में व्याप्त है।

मोक्ष

नाथ सम्प्रदाय में योगी का परम पुरूषार्थ मोक्ष माना गया है तथा नाथ को मोक्ष का दाता। योगी इसी की अभिलाषा को रखते हुए अपने शरीर को साधना की ओर ले जाता है।

सद्‌गुरू

नाथ दर्शन में गुरू का स्थान महत्त्वपूर्ण माना गया है क्योंकि योग साधना में गुरू के मार्गदर्शन को अनिवार्य माना गया है। अलवर महाराजा जयसिंह की सहायता से प्रजा के आश्रय में कुँआ खोदा, उससे सिद्ध हीरानाथ जी की कृपा से मधुर जल निकला।[21]

नाथों को साधना मार्ग में अग्रसर होने के लिए गुरूकृपा व दया की आवश्यकता पड़ती है। बिना गुरू की कृपा एवं दया के जटिल साधना पद्धति नहीं हो सकती। योग से प्रभावित साधना पद्धति को अपनाने के कारण गुरू परम्परा में आस्था दृढ़ करना अनिवार्य हुआ। इस संबंध में गोरखनाथ के विचार उल्लेखनीय है।[22]

''गगन मण्डल में अंधा कुआं, तहां अमृत का वासा।
सगुरा होई सो भरि–भरि पीवे, निगुरा जाप प्याला।''

संत भक्त कवयित्री मीरां की वृहत्पदावली में भी लिखा है–

सगुरा सुरा अमृत पीवे, निगुरा प्यासा जाती।[23]

मानव के बौद्धिक विकास के इतिहास में गुरू परम्परा का संबंध रहा है। गुरू एवं शिष्य के बीच सदियों से चली आ रही परिपाटी वर्तमान तक चली आ रही है। संत के चिंतन एवं साधना में गुरू का स्थान सर्वोपरि माना गया है।

नाथ सम्प्रदाय की साधना पद्धतियों का महत्व

नाथ साधना पद्धति में पारंगत व्यक्ति सिद्ध या योगी कहा जाता है। नाथ योगी होना वह स्थिति जहां उसके लिऐ कोई भी रहस्य नहीं रह जाता।

सिर्फ नाथ सम्प्रदाय में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण वैदिक साहित्य एवं शास्त्रों में योग का गुणगान किया गया है। गीता में भी भगवान श्री कृष्ण ने योग का गुणगान किया है। उदाहरण के लिए गीता में अध्याय छः के श्लोक 37–38, और 39 में अर्जुन द्वारा जिज्ञासा प्रकट करने पर भगवान श्री कृष्ण श्लोक 40–45 तक योग के महत्व को स्पष्ट करते है और अन्त में 46 श्लोक में तो अर्जुन को योगी हो जाने का स्पष्ट आदेश देते है।

उद्वहरण देखिये

''अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाश्चलितमानसः
अप्राप्य योगसंसिद्धि कां गति कृष्ण गच्छति।।37।।
कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिनाभ्रमिव नश्यति।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विभूदों ब्रहमणः पथि।।38।।

'हे कृष्ण ! जिसकी साधना में श्रद्धा है किन्तु प्रत्यन्न शिथिल है, वह अन्त समय में अगर योग्य से विचलितमना हो जाये, तो वह योगसिद्धि को प्राप्त न करके किस जाति को चला जाता है ? ।।37।।

संसार के आश्रय से रहित और परमात्यप्राप्ति के मार्ग से विचलित दोनों और से भ्रष्ट हुआ योग साधक क्या छिन्न – छिन्न बादल की तरह नष्ट तो नहीं हो जाता ? ।।38।।

श्री कृष्ण उवाच

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्प विधते।
न हि कल्याणकृष्कश्चिर्दुति तात गच्छति।।40।।
प्राप्प पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतिः सभाः।।
शुचिनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोडभिजायते।।41।।
अथवा योगिनाभेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लमतरं लोके जन्म यदीदृशम्।42
तहा तं बुद्धिसंयोग लभते पौर्वदोहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिच्धौ कुरूनन्दन।।43।।
पूर्वाभ्यासेन तेनैव हियते हावशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रहातिवर्तते ।।44।।
प्रपत्नात् मतमानस्तु योगी सशुद्धकिल्बिषः।
अनेकजन्यसंसिच्दस्ततो पाति परां गतिय् ।।45।।
तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकारः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्यायोगी भवार्जुन।।46।।

'हे पृथानन्दन! उसका, जिसका योग पूरा न हो सका। न तो इहलोक में न परलोक में ही विनाश होता है। क्योंकि कल्याणकारी काम करनेवाला कोई भी मनुष्य दुर्गति को नहीं जाता।।40।। वह योगभ्रष्ट पुण्यकर्म करने वालों के लोकों को प्राप्त होकर और वहां बहुत वर्षों तक रहकर फिर यहां शुद्ध श्रीमानों के घर में जन्म लेता है।।41।। अथवा योगभ्रष्ट ज्ञानवान तथा वैराग्यवान योगियों में कुल में ही जन्म लेती है। इस प्रकार का जन्म संसार में बहुत दुर्लभ है।।42।। हे कुरूनन्दन। वहां पर उसको पूर्वजन्मकृत साधन – सम्पत्ति अनायास ही प्राप्त हो जाती है। उससे वह साधन की सिद्धि के विषय में पुन विशेषता से पार करता है।।43।। ऐसा योगभ्रष्ट मनुष्य भोगों के परवश होता हुआ भी पूर्वजन्म में किये हुए अभ्यास के कारण ही परमात्मा की तरफ खिंचा जाता है। क्योंकि योग का जिज्ञासु भी वेदों में कहे हुए सकाय कार्यों का अतिक्रमण कर जाता है।।44।। जो योगी प्रयत्नपूर्वक यत्न करता है और जिसके पाप नष्ट हो गये है तथा जो अनेक जन्मों से सिद्ध हुआ है वह योगी परमगति को प्राप्त हो जाता है।।45।। तपस्वियों से भी योगी श्रेष्ठ है, ज्ञानियों से भी योगी श्रेष्ठ है और कर्मियों से भी योगी श्रेष्ठ है। अतः हे अर्जुन तू योगी हो जा ।।46।।

इससे पूर्व चौथे अध्याय के 33 वे तथा 34 वें श्लोक में वे अर्जुन को बताते है कि –

श्री कृष्ण उवाचः

श्रेयान्द्रव्यमयाघज्ञाज्ज्ञानपज्ञ : परंतम।
सर्व कर्माखिल पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।।33।।
तध्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेज्ञयन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्भिनः।।34।।

''सांसारिक वस्तुओं से सिद्ध होने वाले योग से ज्ञानयोग सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि सम्पूर्ण यज्ञों और कर्मों की पराकाष्ठा ज्ञान योग है। इसलिये तत्वज्ञानी योगियों को भली प्रकार

दण्ड़वत् प्रणाम कर सेवा और निष्काम भाव से किये हुए प्रश्नो द्वारा उस तत्वज्ञान को ज्ञान।''

आदिनाथ महायोगी भगवान शिव शंकर ने भी यह माता पार्वती को इस योग की महिमा का गुणगान किया। जो पुराणों में उमर कथा के नाम से प्रसिद्ध है। यही योग विद्या भगवान शंकर द्वारा आदि गुरू महायोगी गोरक्षनाथ के रूप में अवतार लेकर सम्पूर्ण मानव जगत में प्रचारित की गई।

नाथ सम्प्रदाय की साधना पद्धतियों की मुख्य विशेषता है कि इसके अनुयायी केवल आत्म अध्ययन की विधि योग का अभ्यास करते है। ग्रन्थ एवं शास्त्रों का अध्ययन उनके लिए गौण होता है। साधनों में केवल शरीर ही साधन है इसलिए समस्त प्रकार के संग्रह, परिग्रहों से विरक्त होते है पद और प्रतिष्ठा की आकाक्षां नहीं होती मान–अपमान की अनुभूति से परे, अपने पराये,सुख–दुःख, अमीर–गरीब तथा सोने और मिट्टी में सम दृष्टि रखते है। अतः जो केवल स्वयं का अध्ययन करके समस्त बाहरी आडम्बरों से विरक्त और मुक्त है वहीं मोक्ष का अधिकारी है। इसिलिए गुरू गोरक्ष नाथ ने कहा है कि ''मैं कहता हूँ कि यदि वे मेरा उपदेश मानें तो सभी ग्रन्थों को कुंए में फैंक दे क्योंकि आधुनिक समय में जो स्वयं ही मुक्त नहीं है, वे दूसरों को मोक्ष का उपदेश में किस तरह समर्थ हो सकते है ? ये निपुणता, अभिमान, जीविकोपार्जन,व्यसन अथवा किसी भी अभिलाषा की पूर्ति के लिये शास्त्र रचना करते हैं और रचनायें पारमार्थिक पुरूषों के समक्ष क्या महत्व रखती है।

निष्कर्ष

अन्य षड्दर्शनों की भांति नाथ सम्प्रदाय में भी मोक्ष प्राप्ति को मनुष्य का परम लक्ष्य माना गया है। इसके लिए नाथ सम्प्रदाय में विभिन्न साधना पद्धतियाँ (योग) बताई गयी है। जैसे –हठयोग, आसन, प्राणायाम, षट्कर्म, बन्ध, नाडियाँ, मुद्रा चक्र, नाद एवं बिन्दु। नाथ सम्प्रदाय के अनुसार इस योग साधना मार्ग पर चलने के लिए गुरू की आवश्यकता होती है क्योंकि बिना गुरू कृपा के यह जटिल साधना पद्धति सम्पन्न नही हो सकती इसीलिए नाथ सम्प्रदाय में गुरू का बडा महत्व है। इस साधना में पारंगत होने पर व्यक्ति सिद्ध या योगी कहलाता है और उसे सहज आनन्द की प्राप्ति होती है। यही मनुष्य का परम लक्ष्य है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *(क) नाथ सम्प्रदाय, डॉ. द्विवेदी हजारी प्रसाद, पृ. 1*
   (ख) नाथ सिद्ध एक विवेचन–ले. धीर नरेन्द्र, पृ. 18
2. *राजस्थान के नाथ सम्प्रदाय का सांस्कृतिक इतिहास–डॉ. सांखला कमल किशोर, पृ. 17*
3. *(क) नाथ और सन्त साहित्य–डॉ. उपाध्याय नागेन्द्रनाथ, पृ. 3*
   (ख) गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह, पृ. 11 से उदृत।
4. *नाथ इतिहास– चौहान प्रकाशनाथ, पृ. 22*
5. *नाथ सम्प्रदाय–डॉ. द्विवेदी हजारी प्रसाद, पृ. 3*
6. *नाथ इतिहास (नाथ समाज का खोजपूर्ण इतिहास)–चौहान प्रकाशनाथ, पृ. 22*
7. *नाथ इतिहास–चौहान प्रकाशनाथ, पृ. 22–23*
8. *नाथ सम्प्रदाय इतिहास एवं दर्शन–योगी तंवर हुकम सिंह, पृ. 48*
9. *नाथ सम्प्रदाय इतिहास एवं दर्शन–तंवर योगी हुकम सिंह, पृ. 49*
10. *राजस्थान का नाथ साहित्य–जुनेजा आलेख वेदप्रकाश,पृ. 36 पर शांदिल्य भक्ति सूत्र 2 से उदृत।*
11. *नाथ सम्प्रदाय–डॉ. द्विवेदी हजारी प्रसाद, पृ. 1; 18वीं सदी के अन्त में काशी के बलभद्र पण्डित ने सिद्ध–सिद्धान्त पद्धति को संक्षेप में कर सिद्ध–सिद्धान्त संग्रह ग्रंथ लिखा था।*
12. *नाथ सम्प्रदाय–डॉ. द्विवेदी हजारी प्रसाद, पृ. 123*
13. *नाथ पंथ और उसका प्रभाव–डॉ. सोलंकी कोमलसिंह, पृ. 125*
14. *बावरी पंथ के हिन्दी कवि–डॉ. शुक्ल भगवती प्रसाद, पृ. 164*
15. *बावरी पंथ के हिन्दी कवि–डॉ. शुक्ल भगवती प्रसाद, पृ. 165*
16. *राज. के नाथ सम्प्रदाय का सांस्कृतिक इतिहास–डॉ. सांखला कमल किशोर, पृ. 20*
17. *राज. प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर की आर्ट गैलरी में षट्चक्र निरूपण नामक सचित्र हस्तलिखित ग्रंथ का खरड़ा प्रदर्शित है।*
18. *बावरी पंथ के हिन्दी कवि–डॉ. शुक्ल भगवती प्रसाद, पृ. 166*
19. *बावरी पंथ के हिन्दी कवि–डॉ. शुक्ल भगवती प्रसाद, पृ. 168*
20. *देव स्तुति–कपलानी योगी शिवनाथ जी, पृ. 13*
21. *गोरखबानी पृ. 9 के आधार पर राजस्थान के प्रमुख संत एवं लोक देवता–डॉ. शुक्ल डी.सी. ने अपनी पुस्तक पृ. 57 पर लिखा है।*
22. *मीरां वृहत्पदावली–पुरोहित हरिनारायण, पृ. 15*